जनवरी १९९८ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

अनाथपिंडिक

दान-चेतना

बुद्धप्रमुख भिक्षुसंघ के विदा होने पर अनाथपिंडिक कुछ देर विश्राम करने के लिए अतिथिकक्ष के पलंग पर जा लेटा। रात भर का जागा हुआ था। तो भी उसकी आंखों में नींद नहीं थी। सारा शरीर, शरीर के अंग-प्रत्यंग, अंग-प्रत्यंग के अणु-अणु किसी अपूर्व अदृश्य सुधाधारा से अभिषिक्त हो रहे थे। मानस एक अनिर्वचनीय धर्मरस के रसास्वादन में निरत था। नींद की कोई आवश्यकता नहीं थी। नींद से तन और मन को जो विश्रांति मिलती है वह इस प्रभूत प्रश्रब्धि और प्रशांति की तुलना में तुच्छ थी।

बंद आंखों के सामने बार-बार तथागत का शांत सौम्य मुखमंडल प्रकट होता। बार-बार गेरुए वस्त्रधारी पंक्तिबद्ध भिक्षुओं के दीप्त चेहरे प्रकट होते। बुद्ध और संघ की जो आकर्षक आकृतियां उसके चित्त-पटल पर गहरी अंकित हो गयी थीं, बंद आंखों के सामने बार-बार उन्हीं का बाह्य प्रक्षेपण हो रहा था। आज के पहले उसने न कभी ऐसा सुसंयत शास्ता देखा था और न ही ऐसा अनुशासित गृहत्यागी संत समूह। उन दिनों का महादानी धनकुबेर होने के कारण वह कई धर्मशास्ताओं के संपर्क में आया था और उनके अनेक गृहत्यागी शिष्यों के भी। परंतु आज जिनके दर्शन हुए वे औरों के मुकाबले अतुलनीय थे, अनुपम थे, अनुत्तर थे। अनाथपिंडिक देर तक आंख बंद किये इन्हीं भावों में खोया हुआ लेटा रहा, इतने में उसे दरवाजे के बाहर पदचाप सुनायी दिये। वह उठ बैठा। उसका बहनोई नगरश्रेष्ठि आया था और उसके साथ थी गृहस्वामिनी, जो कि अनाथपिंडिक की बहन थी। भीतर आते ही श्रेष्ठि ने प्रश्न किया, "अनाथपिंडिक जी! कुछ देर सो पाये?"

अनाथपिंडिक ने कहा, "श्रेष्ठिजी! सारे जीवन सोया ही रहा। आंखें तो अब खुली हैं। जागृति तो अब आयी है। मैं आप का बड़ा आभारी हूं। आप के कारण ही आज मुझे इतना बड़ा लाभ मिला। मैं अनुपम त्रिरत्न के संपर्क में आया। अब मैं एक और अनमोल लाभ अर्जित किया चाहता हूं। आप तो जानते ही हैं, मैंने अनेकों को विपुल दान दिया है; देता ही रहता हूं। उस दान का कोई पुण्य नहीं होता, ऐसा तो नहीं कहता परंतु असीम फलदायी दान का बीज बोने के लिए मुझे ऐसे पुण्य-क्षेत्र पहले कभी नहीं मिले। अतः मैंने कल प्रातः के लिए भगवान बुद्ध और उनके संपूर्ण संघ को भोजन दान के लिए आमंत्रित किया है। भगवान ने मुझ पर कृपा कर इसे स्वीकार कर लिया है। परंतु मैं देखता हूं कि तुम्हारे नौकर-चाकर आज प्रातःकाल के संघदान की तैयारी में किस प्रकार जुटे रहे। वे बहुत थक गए होंगे। अब पुनः उनके लिए इतना ही काम सामने है। सचमुच उन्हें बहुत कष्ट होगा, इसी का मुझे संकोच है।"

श्रेष्ठि ने कहा, "जब-कभी घर पर भिक्षुसंघ के साथ भगवान बुद्ध के लिए भोजनदान का पुण्य अवसर प्राप्त होता है, तब मेरे नौकर-चाकरों के, सेवक-सेविकाओं के, दास-दासियों के मनमानस में खुशियां छलकने लगती हैं। वे भी अपने आपको बहुत भाग्यशाली समझते हैं और असीम उत्साह से काम में जुट जाते हैं। आप उनके लिए लेशमात्र भी चिंता न करें। और हां, मेरा एक निवेदन है कि कल के संघदान का पुण्य तो आपका ही हो, परंतु इस पुण्यकार्य में जो धन व्यय होगा, वह हमारी ओर से लगेगा। आप तो हमारे अतिथि हैं। कृपया मेरे इस निवेदन को अस्वीकार न कीजिए।"

परंतु अनाथपिंडिक ने श्रेष्ठि के इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया। सारे घर में महासंघ दान की तैयारियां पुनः आरंभ हो गयीं। नौकर-चाकरों, सेवक-सेविकाओं और दास-दासियों के मानस में सचमुच उमंग और उल्लास की लहरें उर्मिल हो उठीं। सभी प्रसन्नचित्त से मुस्कराते हुए काम में लग गये। अनाथपिंडिक की बहन भी खुशियों से थिरक उठी। भैया ने कितना अच्छा निर्णय किया। कल हमारा घर भगवान के पवित्र चरणों से पुनः पावन हो उठेगा।

अनाथपिंडिक के संघदान की चर्चा नगर के नैगम तक पहुँची। वह अनाथपिंडिक का पूर्व परिचित था। उससे मिलने आया। उसने भी यही निवेदन किया कि भोजन-दान का पुण्य तो आपका ही हो परंतु उसके लिए जो खर्च लगे, वह मेरी ओर से हो। आप तो हमारे नगर से सम्माननीय अतिथि हैं। अनाथपिंडिक ने उसके मैत्रीपूर्ण प्रस्ताव को भी नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया।

चर्चा महाराज बिंबिसार के महलों तक पहुँची। उसने भी अपने एक राज्य कर्मचारी के जरिये यही निवेदन भेजा। अनाथपिंडिक ने अत्यंत नम्रतापूर्वक उसे भी अस्वीकार कर दिया। महाराज ने कहलवाया – इस महासंघदान में प्रचुर धन लगेगा। अनाथपिंडिक अपने साथ इतना धन नहीं लाया होगा। परंतु अनाथपिंडिक ने उत्तर भिजवाया कि वह आवश्यकता से अधिक धन अपने साथ लाया है। महाराज निश्चिंत रहें।

अनाथपिंडिक जब कभी व्यापारिक यात्रा पर निकलता तो पर्याप्त मात्रा में स्वर्णमुद्राएं अपने साथ लेकर चलता। यात्रा में जिस किसी ग्राम में, नगर में, निगम में या राजधानी में जिस किसी व्यक्ति को अथवा जनसमूह को जितना दान देने की चेतना जागती उसे उतना ही दान देता। बुद्धप्रमुख भिक्षुसंघ के भोजन दान के व्यय के लिए उसके पास स्वर्णमुद्रा पर्याप्त थी।

अपने दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर रात्रि के पहले याम में अनाथपिंडिक की बहन और नगरश्रेष्ठि बहनोई अतिथिकक्ष में उसके पास पुनः आ बैठे और देर तक तथागत तथा उनके संतसंघ के बारे में चर्चा चलती रही।

उन्होंने बताया कि आज प्रातःकाल तथागत के साथ जब भिक्षुसंघ आया था और जो कल प्रातः पुनः आने वाला है, उसमें मगध के प्रसिद्ध अग्निहोत्री उरुवेल काश्यप, नदी काश्यप और गया काश्यप तथा उनके एक हजार जटिल शिष्य भी सम्मिलित हैं।

ये सब भगवान के संपर्क में आकर उनकी शिक्षा से इतने प्रभावित और लाभान्वित हुए कि दाढ़ी-मूंछ और जटा मुँडवा कर उनके शिष्य बन गये। यह सुन कर अनाथपिंडिक बहुत रोमांचित हुआ। वह जानता था कि काश्यप-बंधु मगध में ही नहीं बल्कि मगध के बाहर कोशल देश के अनेक निवासियों के लिए भी पूज्य हैं। अग्निहोत्री कर्मकांड के मुकाबले उन्होंने तथागत की ध्यान-साधनाप्रधान जीवनचर्या सचमुच अधिक सफल सार्थक देखी होगी।

उसे यह भी बताया गया कि मगध के प्रसिद्ध धर्माचार्य संजय के दोनों प्रमुख शिष्य सारिपुत्र और मौग्गल्लायन सहित उसके अन्य २५० अंतेवासी भी उसे छोड़ कर भगवान की शरण चले आये। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक गृहत्यागी संन्यासी तथागत के संघ में सम्मिलित हो गये। राजगृह के अनेक गृहपति भी गृहस्थ जीवन त्याग कर उनके पास प्रव्रजित हो भिक्षुसंघ में सम्मिलित हो गये। इस प्रकार दिन पर दिन भिक्षुसंघ की संख्या बढ़ती गयी और इसके साथ-साथ उनका मान-सम्मान भी। इसके कारण अन्य अनेक प्रव्रजितों के मन में डाह उत्पन्न हुई। उन्होंने नगरनिवासियों को भगवान का विरोधी बनाने के लिए उनके विरुद्ध दूषित प्रचार करना आरंभ किया। उनकी बातें सुन-सुन कर अनेक लोग यह कहने लगे –

यह श्रमण गौतम माता-पिता को निपूता बनाने के लिए, कुलवधुओं को विधवा बनाने के लिए, गृहस्थों का वंश नष्ट करने के लिए आया है। इसने काश्यप मंडली के एक हजार जटिलों को भिक्षु बना लिया। संजय के ढाई सौ शिष्यों को भिक्षुसंघ में सम्मिलित कर लिया। इतने से इसकी तृष्णा पूरी नहीं हुई। अब मगध के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुलपुत्र भी इसके पास भिक्षु बनते जा रहे हैं। और न जाने कि न-कि न को अपने बाड़े में बांधेगा।

परंतु यह निंदा थोड़े ही दिनों चली। शीघ्र ही लोगों की समझ में आने लगा कि शाक्यपुत्र श्रमण गौतम चेले मूंड कर कोई संप्रदाय नहीं खड़ा कर रहा है। यह शुद्ध धर्म सिखा रहा है। जिन्हें भी सत्य धर्म का शुद्ध स्वरूप समझ में आ जाता है वे स्वभावतः इसके अनुयायी बन जाते हैं। जन्म मरण के भवचक्र से शीघ्र मुक्त होने के लिए जिनके मन में तीव्र धर्मसंवेग जागता है वे घर से बेघर हो इसके पास जाकर प्रव्रजित होते हैं। धर्म तो यह सब को सिखाता है। सभी भिक्षु नहीं बन जाते। अनेक लोग ऐसे हैं जो अभी गृह नहीं त्याग सकते। वे गृही रहते हुए भी उसी धर्मशिक्षा का पालन करते हैं। भले उनकी प्रगति धीमी हो, पर धर्म धारण करने का लाभ उन्हें भी मिलता ही है। बुद्ध के बताए मार्ग पर चल कर कितने गृहस्थों ने अपने जीवन सुधार लिये हैं। जब यह सच्चाई समझ में आने लगी तो भगवान द्वारा दिये गये शुद्ध धर्म के प्रशिक्षण के प्रति कोई भी समझदार व्यक्ति कैसे विरोध करता? बल्कि और अधिक संख्या में उनके बताए मार्ग पर श्रद्धापूर्वक चलने लगे।

यों शाक्यमुनि के प्रति जागी हुई निंदा शीघ्र ही प्रशंसा में बदलने लगी। लोगों ने देखा कि वे अपने अनुयायियों को धर्म में दीक्षित कर रहे हैं, किसी संप्रदाय में नहीं। वे लोगों को सत्य का दर्शन कराते हैं। मिथ्या अंधविश्वासों में नहीं उलझाते। उनकी शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य यही है कि लोग शीलवान बनें, समाधिवान बनें, प्रज्ञावान बनें और अपना मंगल साध लें। जो उनके बताये मार्ग पर चलने लगे उन्होंने देखा कि इस शिक्षा से लोभ, द्वेष और मोह नष्ट होते हैं। जितने-जितने नष्ट होते हैं, व्यक्ति उतना-उतना निर्मलचित्त होता है, दुखविमुक्त होता है। उसका मानस मैत्री, करुणा और सद्भावना से भर उठता है। गृहस्थ हों या भिक्षु, बुद्ध की यह शिक्षा सब के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है।

चर्चा चलती रही। नगरश्रेष्ठि ने अनाथपिंडिक से कहा कि हम गृहस्थ विशेषतः व्यवसायी वर्ग के लोग कितने राग-रंजित रहते हैं, पारस्परिक ईर्ष्या और मात्सर्य जगा कर कितने द्वेष-दूषित रहते हैं, परिणामतः कितने दुखी रहते हैं। मोह-मूढ़ता के कारण यह समझ भी नहीं पाते कि अपने भीतर राग और द्वेष के प्रजनन तथा संवर्धन द्वारा हम स्वयं अपने आप को दुखी बनाते हैं। इसके लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं। बुद्धि के स्तर पर यह समझ लें तो भी इस दुःखदायी स्वभाव-शिकंजे से कैसे मुक्त हों, यह नहीं जानते। अन्य आचार्यों की भांति तथागत केवल उपदेश दे कर नहीं रह जाते बल्कि इस दुःख से विमुक्त होने के लिए ऐसी सहज सरल विधा सिखाते हैं जिसका अभ्यास करके लोग इसी जीवन में लाभान्वित होने लगते हैं।

श्रेष्ठि ने एक और महत्त्वपूर्ण बात यह बतायी कि तथागत और उनके भिक्षु ऐसी अनमोल विद्या सिखा कर भी बदले में कुछ नहीं मांगते। अन्य साधुओं की भांति ये जोड़ू-बटोरू नहीं हैं। सर्वथा अकिंचन रहते हैं। आश्चर्यजनक है इनका त्याग, अद्भुत है इनका अपरिग्रह।

श्रेष्ठि ने अनाथपिंडिक को बताया कि महाराज बिंबिसार ने नगर के बीचोबीच तथागत और उनके भिक्षुसंघ को वेणुवन विहार दान में दिया। यह उपवन बहुत विस्तृत है। फिर भी इतने बड़े भिक्षुसंघ के लिए बहुत छोटा है। अतः इसमें भगवान कुछ एक भिक्षुओं के साथ कभी-कभीही विहार करते हैं और उस समय उनके पास जो गृहस्थ आते हैं उन्हें शुद्ध धर्म धारण करने की विद्या सिखाते हैं। परंतु अधिकांशतः वे अपने समग्र भिक्षुसंघ के साथ नगर के बाहर रहते हैं। वे कभी किसी सुनसान श्मसान-भूमि के समीप रहते हैं जहां कि आज प्रत्यूषकाल में आप उनसे मिलने गये। कभी किसी पर्वत की गुहा-कंदराओं में अथवा वन-प्रदेशों में पेड़ों के नीचे रहते हैं। नगर में भिक्षाटन करके ऐसे निर्जन स्थानों में निवास करने चले जाते हैं जहां विभिन्न प्रकार की असुविधाएं हैं। वर्षा, शीत और धूप से बचने के लिए सिर पर कोई छत नहीं। हिंस्र पशुओं से, सरिसृपों से, मक्खी-मच्छरों से, कीट-पतंगों से बचने के लिए कोई कुटिया भी नहीं। परंतु इसके लिए वे किसी से कभी कुछ नहीं मांगते। ऐसे असुविधाजनक निर्जन स्थानों में निवास करते हुए भी वे और उनके भिक्षु अत्यंत संतुष्ट प्रसन्न रहते हैं। लेकिन ऐसे निर्जन स्थानों में उनके पास जाकर बहुत कम नागरिक धर्म की शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं। अतः एक बार मैंने विनम्र भाव से उनके कुछ भिक्षुओं से निवेदन किया कि यदि वे स्वीकृति दें तो मैं नगर की चारदीवारी के भीतर ही उनके निवास के लिए कुछएक विहार बना कर दान दूं जिससे कि वे स्वयं भी बिना किसी बाधा के

सुविधापूर्वक ध्यान कर सकें और नगर के अनेक नागरिक भी उनके पास सुगमतापूर्वक पहुँच कर शुद्ध धर्म सीख सकें।

भिक्षुओं ने मेरे इस प्रस्ताव को स्वयं स्वीकार नहीं किया। उन्होंने इसे भगवान के सम्मुख रखा। मेरे सौभाग्य से भगवान ने स्वीकृति दे दी। मैंने नगर में भिन्न-भिन्न स्थानों पर इन संत भिक्षुओं के लिए ६० विहार बनवा दिये। ये विहार न तो भिक्षुओं के आराम करने के लिए हैं, न उनके आमोद-प्रमोद के लिए हैं और न ही आलस्य-प्रमाद में जीवन बिताने के लिए। ये विहार वस्तुतः आदर्श तपोभूमियां हैं, जहां साधक भिक्षु स्वयं भी सुविधापूर्वक ध्यान करते हैं और सुबह-शाम उनके पास आने वाले अनेक गृहस्थ भी उनसे धर्म धारण करने का प्रयोगात्मक प्रशिक्षण लेकर लाभान्वित होते हैं।

ऐसे विहारों का, ऐसी तपोभूमियों का, ऐसे ध्यानकेंद्रों का दान सचमुच असीम फलदायी होता है। श्रेष्ठि ने अनाथपिंडिक को बताया कि इन विहारों का निर्माण करके जब उसने भगवान सहित उनके संत-संघ को दान दिया तब भगवान ने पुण्यानुमोदन करते हुए जो धर्मदेशना दी थी वह उसे सदा रोमांचित करती रहती है। भगवान ने कहा था – "उपासक, बाह्य बाधाओं से सुरक्षित रह कर सुख-सुविधापूर्वक ध्यान कर सकने के लिए जिस विहार का दान दिया जाता है वह सभी दानों में श्रेष्ठ दान है, अग्र दान है। इस दान की सुविधा पाकर विपश्यना ध्यान करते हुए केवल भिक्षु ही अपना भवचक्र भंजन नहीं कर लेते, प्रत्युत दायक गृहस्थों को भी धर्म साधना सिखाते हैं, जिसका अभ्यास करते हुए वे भी शुद्ध सत्य का दर्शन-ज्ञान प्राप्त करते हैं और शनैः-शनैः आस्रवों से विमुक्त होते हैं, भवचक्र का भेदन कर परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं।"

अतः शुद्ध धर्म का विहार एक आदर्श ध्यान केंद्र होने के कारण भिक्षुओं के लिए तो अमित उपयोगी है ही, श्रद्धालु गृहस्थों के लिए भी कम लाभदायी नहीं। इसीलिए ध्यान साधना हेतु बने विहार के दान को भगवान ने सर्वोत्तम दान कहा, अग्र दान कहा। सद्गृहस्थ भिक्षुओं को विहार का अग्र दान देते हैं। बदले में भिक्षुओं से वे धर्म का अग्रदान प्राप्त करते हैं और लाभान्वित होते हैं।

श्रेष्ठि से यह विवेचन-विवरण सुनते-सुनते अनाथपिंडिक की आंखें गीली हो गयीं। गद्गद कंठ से उसने कहा –साधु! साधु! साधु! श्रेष्ठि, सचमुच तुम्हारा यह विहारों का दान अग्र ही है। सचमुच तुम धन्य हुए।

बहन-बहनोई के चले जाने के बाद अनाथपिंडिक बिस्तर पर लेटे-लेटे इसी चिंतन-मनन में निमग्न रहा। मैं देश-विदेशों में स्थान-स्थान पर नित्य सैंकड़ो भूखों को भोजनदान देता हूं। यह अच्छा है, इसका अपना पुण्य है। एक भूखा व्यक्ति भोजन पाकर एक दिन की भूख की पीड़ा से तो मुक्त होता है, परंतु दूसरे दिन फिर भूखा हो जाता है। उसकी यह भूख की पीड़ा सदा के लिए मिटती नहीं। परंतु अनंतकाल से भव-भ्रमण करने वाले दुखियारे मानव को विपश्यना विद्या मिल जाय तो उसका अभ्यास करते-करते पुनर्जन्म देने वाले जितने-जितने कर्म-संस्कारों से विमुक्त होता है, उतने-उतने दुखों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। सारे भवसंस्कार नष्ट कर ले तो सदा के लिए पूर्णतया भवमुक्त, दुखमुक्त हो जाय। आज प्रातःकाल थोड़े से क्षणों के लिए ही मुझे जिस आंतरिक सुख-शांति की अनुभूति हुई उसका प्रभाव मेरे मानस पर अब तक कायम है और सारे जीवन भर उसकी सुखद स्मृति भुलाई नहीं जा सकेगी। जिस व्यक्ति ने भव-संसरण से पूर्णतया मुक्ति पा ली उसकी सुख-शांति का तो कहना ही क्या? ऐसी परम सुख-शांति अनेकों को मिले। सचमुच धर्म का दान सर्वश्रेष्ठ दान है। धर्मदान के केंद्र स्वरूप इन विहारों का दान भी सर्वश्रेष्ठ दान है। यही अग्र दान है। इसी में अपरिमित मंगल कल्याण समाया हुआ है।

कल्याणमित्र,

सत्यनारायण गोयन्का.